बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 34

अतिशय नियमन

नेटफ्लिक्स, हॉटस्टार और एमेजॉन प्राइम जैसे ओवर द टॉप (ओटीटी) प्लेटफॉर्म चिंतित हैं क्योंकि अगर प्रस्तावित ई-कॉमर्स नीति का मसौदा स्वीकृत हो गया तो उनको उसका अनुपालन करना होगा। समस्या के केंद्र में वस्तुओं और सेवाओं की वह परिभाषा है जो ई-कॉमर्स नीति में शामिल होगी और जिसे उद्योग एवं आंतरिक उद्योग संवर्द्धन विभाग (डीपीआईआईटी) ने तैयार किया है। हाल में जारी नीति के मसौदे में कहा गया है कि डिजिटल सेवाओं और उत्पादों की इलेक्ट्रॉनिक खरीद-बिक्री, विपणन और वितरण आदि समेत ऐसे तमाम सौदे ई-कॉमर्स में शामिल होंगे।

एक बार यह परिभाषा अगर प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) नियमों से संबद्ध हो गई तो हालात की जटिलता एकदम स्पष्ट हो जाएगी। डीपीआईआईटी द्वारा ही जारी एफडीआई नीति के प्रेस नोट के मुताबिक एफडीआई वाले ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म इस मंच पर बिकने वाले सामान की इन्वेंटरी का मालिकाना हक या उस पर नियंत्रण नहीं रख सकते। शायद यही वजह है कि एमेजॉन जो अमेरिका तथा अन्य बड़े बाजारों में इन्वेंटरी आधारित ई-कॉमर्स कंपनी के रूप में काम करती है उसे भारत में अपना कारोबारी मॉडल तब्दील करना पड़ा। फ्लिपकार्ट, जिसका नियंत्रण विदेशी निवेशकों के पास है और अब जिसमें अमेरिकी कंपनी वॉलमार्ट की बहुलांश हिस्सेदारी है, उसे भी अपने इन्वेंटरी आधारित कारोबार को बदलकर एक मार्केट प्लेस में तब्दील होना पड़ा। सरकार को इस बात पर नजर रखनी होगी कि कैसे विशुद्ध ई-कॉमर्स कंपनियों ने निवेश और स्वामित्व को नए सिरे से हासिल करने के लिए पिछले दरवाजे वाले तौर तरीकों को अपनाया है और वे समय-समय पर जटिल एफडीआई नियमों को धता बताती रही हैं। अगर यह सबक लिया जाता है तो अधिकारी ओटीटी कारोबारियों पर वही जटिल दिशानिर्देश लागू करने से बचेंगे। ई-कॉमर्स कंपनियों के मामले में क्या हुआ, यह बात सभी जानते हैं। उन्होंने कागज पर अपने मूल कारोबारी मॉडल को तब्दील कर दिया और नियमों को धता बताने के तरीके तलाश कर लिए। उदाहरण के लिए इन कंपनियों ने अपने प्लेटफॉर्म पर अहम स्वामित्व और हिस्सेदारी वाले विक्रेता तैयार कर लिए। ये विक्रेता तब तक अपना दबदबा कायम रखने में कामयाब रहे जब तक कि सरकार ने इस पर ध्यान देकर नियमों में तब्दीली नहीं की।

स्थापित कारोबारी मॉडल के साथ छेड़छाड़ अच्छी बात नहीं है और नीति निर्माताओं को ई-कॉमर्स क्षेत्र में की गई गलती को उच्च वृद्धि दर वाले ओटीटी क्षेत्र में नहीं दोहराना चाहिए। ऐसे वक्त में जबकि नेटफ्लिक्स, हॉटस्टार और एमेजॉन प्राइम का नाम घर-घर में पहचाना जा रहा है सरकार को मालिकाना और नियंत्रण के मसलों के सूक्ष्म प्रबंधन से माहौल खराब नहीं करना चाहिए। ओटीटी, विभिन्न प्रोडक्शन हाउस से मिलने वाली सामग्री पर लाइसेंस लगा सकते हैं लेकिन मूल सामग्री उनकी बौद्धिक संपदा पर नियंत्रण प्रदान करती है। ओटीटी को ई-कॉमर्स फर्म के रूप में वर्गीकृत करना सही नहीं है। डीपीआईआईटी को इसे लेकर सावधानी बरतनी होगी। घरेलू लॉबी के संरक्षण की इच्छा से भी हर हाल में बचा जाना चाहिए। ई-कॉमर्स क्षेत्र में सरकार अक्सर विदेशी कंपनियों की छूट का विरोध करने वाले भारतीय कारोबारियों की लॉबी से संचालित हुई है। ओटीटी के जरिए प्रसारित होने वाली डिजिटल सामग्री के साथ भी यही रुख अपनाया गया तो यह प्रतिगामी कदम होगा। तमाम बड़ी ओटीटी कंपनियों ने भारतीय दर्शकों के लिए स्थानीय सामग्री तैयार करने पर भारी निवेश किया है। स्थानीय विषयवस्तु वाले कार्यक्रमों की शुरुआत 2011 में नेटफ्लिक्स ने की थी और अब यह सफलता का मूल मंत्र बन गया है। इसे रोकने की कोशिश से बहुराष्ट्रीय कंपनियों में गलत संकेत जाएगा और लाखों भारतीय पसंदीदा कार्यक्रम नहीं देख पाएंगे। नीति निर्माता इन्वेंटरी मॉडल को लेकर अपने रुख पर भी दोबारा विचार करेंगे तो बेहतर होगा।

अजय मोहंती

रक्षा क्षेत्र में आत्मनिर्भरता से ही बनेगी बात

रक्षा उपकरणों के डिजाइन, विकास और उत्पादन की प्रक्रिया का स्वदेशीकरण करना सामरिक स्वायत्तता की दृष्टि से भी काफी अहमियत रखता है। विस्तार से जानकारी प्रदान कर रहे हैं **नितिन देसाई**

बीते कुछ सप्ताह के दौरान देश के राजनीतिक हलकों और मीडिया में राफेल लड़ाकू विमान सौदे की खूब चर्चा रही। सारी दलीलें मौजूदा सौदे और अतीत में किए गए सौदे की लागत और बातचीत की प्रक्रिया में प्रधानमंत्री कार्यालय की भूमिका पर केंद्रित रहीं। चुनावी मौसम है इसलिए यह बहस चलती रहेगी। एक बड़े अंतरराष्ट्रीय हथियार खरीद सौदे में ऐसा होना लाजिमी है।

इस बहस में असल समस्या को किनारे कर दिया गया है। समस्या है हथियार आपूर्तिकर्ताओं पर हमारी भारी भरकम निर्भरता। स्वीडन में अंतरराष्ट्रीय शोध संस्थान सिपरी के आंकड़ों के मुताबिक वर्ष 2017 में भारत आने वाले कुल विदेशी हथियारों की लागत 300 करोड़ डॉलर तक थी। दुनिया के अन्य वैश्विक या क्षेत्रीय शक्ति संपन्न देश नजदीकी सहयोगियों के अलावा हथियार आयात पर निर्भर नहीं रहते। वर्ष 2017 में इन देशों का कुल हथियार आयात 400 करोड़ डॉलर था। हकीकत में उनमें से कई खुद बेहतरीन हथियारों के निर्यातक हैं।

ऐसा कोई भी देश जो अहम हथियारों के लिए दूसरे देशों पर निर्भर हो वह सामरिक स्वायत्तता हासिल करने के बारे में सोच भी नहीं सकता। लंबी अवधि के नजरिये से देखें तो राफेल सौदे को लेकर जो बातें की जा रही हैं वे सही मायने में मूल समस्या का समाधान नहीं करतीं। हमारी असल चिंता यह है कि हम न केवल लड़ाकू विमानों जैसे उन्नत हथियारों के लिए बल्कि राइफल जैसे बुनियादी हथियारों तक के लिए दूसरे देशों पर निर्भर हैं। हमारी रक्षा खरीद प्रक्रिया ऐसी है कि हथियारों से जुड़े शोध, इंजीनियरिंग, नए उत्पादों, उन्नत इलेक्ट्रॉनिक्स आदि क्षेत्रों में लंबी अवधि का निवेश नहीं आ पा रहा है। जबकि उन्नत हथियारों के निर्माण में इसकी अहम भूमिका है।

रक्षा उपकरण उद्योग काफी हद तक विनिर्माण क्षमता की विविधता और अर्थव्यवस्था की शोध क्षमता पर निर्भर करता है। क्योंकि इन्हीं के दम पर वह अपने प्रतिस्पर्धियों का मुकाबला कर सकता है। यही वजह है कि 70 वर्ष से भी पहले सन 1946 में पंडित नेहरू द्वारा रक्षा नीति पर लिखे गए एक नोट में कहा गया है, 'अगर किसी देश ने वैज्ञानिक शोध को उसके सभी स्वरूपों में उच्चतम स्तर तक नहीं पहुंचाया तो वह औद्योगिक क्षेत्र में या किसी अन्य देश के साथ युद्ध में कतई प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता।'

इसी सामरिक अवधारणा के चलते बुनियादी उद्योगों और रक्षा के क्षेत्र में डीआरडीओ और परमाणु ऊर्जा आयोग जैसे संस्थानों की स्थापना को लेकर जबरदस्त प्रतिबद्धता दर्शाई गई। विनिर्माण क्षमता में इजाफा करने और शोध प्रतिस्पर्धा बढ़ाने के इस दोहरे लक्ष्य को पाने में हमें किस हद तक कामयाबी मिली है?

पंचवर्षीय योजना के पहले चरण में वृहद स्तर पर जीडीपी में विनिर्माण की हिस्सेदारी में इजाफा हुआ और यह सत्तर के दशक के मध्य तक यह 11 फीसदी से बढ़कर 16 फीसदी हो गया। परंतु उसके बाद से यह अनुपात 17 फीसदी के आसपास ठिठका हुआ है। हालांकि यह आंकड़ा उन व्यापक बदलावों को नहीं समेटता जो विनिर्माण के क्षेत्र में आए हैं। इतना ही नहीं हमें यह भी समझना होगा कि विनिर्माण क्षेत्र के बाहर जो भी कुछ घट रहा है, उदाहरण के लिए सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र में जो कुछ हो रहा है, उनका भी महत्त्वपूर्ण सामरिक मूल्य है। फिर भी अगर कोई भारत की तुलना चीन से करे तो हम इस नतीजे की अनदेखी नहीं कर सकते कि अधिकांश उन्नत उत्पादों के लिए हम अभी भी उत्पादन तकनीक, विशिष्ट पदार्थों और इंजीनियरिंग घटकों के आयात पर निर्भर हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी तस्वीर अच्छी नहीं है। आकलन के मुताबिक वैश्विक शोध एवं विकास पर होने वाले व्यय के 4 फीसदी के लिए भारत उत्तरदायी है। तुलनात्मक रूप से देखें तो चीन इस मद में 21 फीसदी का हिस्सेदार है। यह यूरोप के लगभग बराबर और अमेरिका से थोड़ा कम है। आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार भी जीडीपी के अनुपात के रूप में हमारा व्यय केवल 0.7 फीसदी है।

जाहिर सी बात है कि हमें अभी विश्वस्तरीय विनिर्माण और विज्ञान तथा तकनीक क्षमता विकसित करने में लंबा समय लगेगा। मांग की लंबी अवधि की आश्वस्ति के साथ उपयुक्त रक्षा उपकरण उद्योग विकसित करना न केवल रणनीतिक स्वायत्तता के लिए आवश्यक है बल्कि इसकी बदौलत हम अर्थव्यवस्था के असैन्य भाग को और उन्नत बना सकेंगे। अमेरिका की असैन्य तकनीक का बहुत बड़ा हिस्सा उसके रक्षा शोध एवं निर्माण क्षेत्र में किए गए भारी भरकम निवेश पर निर्भर करता है। रक्षा शोध एवं शोध में यह निवेश उसका निजी क्षेत्र भी करता है और सरकारी क्षेत्र भी। इंटरनेट और सूचना प्रौद्योगिकी इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

पीछे मुड़कर देखें तो वर्ष 2004-05 में केलकर समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि रक्षा क्षेत्र में आत्मनिर्भर होने के लिए हमें स्वदेशी हथियार निर्माण पर काम करना चाहिए। इसका एक अहम हिस्सा था उन निजी और सरकारी कंपनियों की पहचान जो दीर्घावधि में शोध, विकास और उत्पादन कर सकें।

दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं हुआ। एक ओर एचएएल जैसी सरकारी कंपनियां जिन्होंने महत्त्वपूर्ण तकनीकी दक्षता हासिल की है, उन्हें अक्षम होने और कमजोर प्रदर्शन के आरोप के साथ किनारे लगाया जा रहा है और दूसरा निजी क्षेत्र को सक्षम बनाने के प्रयास भी अनुबंधित विनिर्माण से आगे नहीं बढ़ सके हैं। निजी क्षेत्र को शोध एवं क्षमता विस्तार न करने देने की वजह स्पष्ट नहीं है। शायद ऐसा इसलिए किया गया होगा क्योंकि इससे सांठगांठ वाले पूंजीवाद के आरोप लग सकते हैं। डीआरडीओ को फंड दिया गया और वह विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी पर होने वाले व्यय के एक तिहाई का जिम्मेदार है। इसने कुछ उल्लेखनीय उपलब्धियां भी हासिल की हैं। परंतु अभी भी उपभोक्ता सेवाओं और डीआरडीओ के बीच विश्वास की भारी कमी है। एक अन्य वजह यह है कि स्वदेशी उत्पादन विकल्प की प्रतीक्षा के बजाय तत्काल आयात को तरजीह दी जा रही है। इन तमाम कमियों को दूर करना होगा। हमें अब उपभोक्ता सेवाओं, शोधकार्य और चयनित उत्पादन कंपनियों एक साथ लाकर राष्ट्रीय लक्ष्यों के अनुरूप रक्षा तंत्र विकसित करना होगा। एक बहुदलीय सुरक्षा परिषद गठित करके इन राष्ट्रीय लक्ष्यों को बढ़ावा देना होगा। हमें दीर्घावधि के लिए मजबूत और भरोसेमंद सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए कुछ अल्पकालिक जोखिम उठाने ही होंगे। केवल ऐसा करके ही हम वह आवश्यक रणनीतिक स्वायत्तता प्राप्त कर सकेंगे जो हमारे राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा के लिए आवश्यक है।

राहुल गांधी का चुनावी वादा और लोकलुभावन राजनीति

दिल्ली डायरी

ए के भट्टाचार्य

कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी ने देश के 5 करोड़ गरीब परिवारों में से प्रत्येक को सालाना 72,000 रुपये आय समर्थन राशि के रूप में देने का वादा किया है। इसका आम चुनाव के नतीजों पर चाहे जो असर हो लेकिन देश की चुनावी राजनीति में यह एक बड़े बदलाव का क्षण है। इसे लेकर किसी तरह की चूक मत कीजिए। फरवरी 2006 में कांग्रेस ने राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के साथ पात्रता योजनाओं की राजनीति शुरू की थी। उसके बाद से यह सिलसिला बढ़ता गया और अब तो इसके चलते देश की राजकोषीय स्थिति के लिए ही संकट तैयार हो गया है। हालांकि तब से अब तक वक्त काफी बदल चुका है। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) के तहत रोजगार गारंटी योजना लागू करते वक्त कांग्रेस सत्ता में थी। अब पार्टी ने मतदाताओं को लुभाने के लिए गरीबों के खाते में धनराशि डालने की बात कही है।

रोजगार गारंटी योजना की तर्ज पर कुछ और पात्रता योजनाएं शुरू की गईं। इनमें भोजन का अधिकार, शिक्षा का अधिकार आदि प्रमुख हैं। हालांकि इनका वित्तीय प्रभाव उतना ज्यादा नहीं रहा। अब सबसे गरीब 20 फीसदी लोगों को नकद सहायता देने की बात कही गई है। यह वादा राजकोष पर 3.6 लाख करोड़ रुपये या कहें जीडीपी के 1.9 फीसदी के बराबर बोझ डाल सकता है।

परंतु 2014 में भाजपा की सरकार बनने के बाद भी इन पात्रता योजनाओं को बंद करने पर विचार नहीं किया गया, बल्कि इनका आवंटन बढ़ा दिया गया। ऐसे में पूरी संभावना है कि राहुल गांधी की आय समर्थन योजना अगर किसी ने भी किसी भी रूप में लागू की तो अन्य दल भी इसे जारी रखेंगे। लोकलुभावन राजनीति ऐसी ही है।

यह होड़ भाजपानीत मोदी सरकार ने शुरू की। इस वर्ष अपने बजट में मोदी सरकार ने कहा कि वह दो हेक्टेयर से कम रकबे वाले किसानों को सालाना 6,000 रुपये का आय समर्थन दे रही है। इससे राजकोष पर सालाना 75,000 करोड़ रुपये का बोझ पड़ा। वह वादा भी चुनाव में वोट जुटाने के लिए किया गया था। अब कांग्रेस ने उसी का विस्तार किया है।

यह अर्थव्यवस्था के लिए बुरी खबर है। आप कह सकते हैं कि देश के सबसे गरीब 20 फीसदी लोगों की जरूरतों को पूरा करके बढ़ती असमानता पर काबू पाया जा सकता है। आखिरकार, सरकार को आजादी के 70 साल बाद भी समाज में व्याप्त भीषण गरीबी को दूर करने के लिए कुछ तो करना चाहिए। इसका सीधा जवाब यह है कि आय की असमानता या गरीबी से इस तरह नहीं निपटा जा सकता। इसके लिए स्वास्थ्य, सफाई, शिक्षा, जल, आवास और खाने के क्षेत्र में सुविधाएं देनी चाहिए।

बीते सात दशक में देश की सरकार ये सारी सुविधाएं जुटाने में नाकाम रही हैं। परंतु इसकी पूर्ति आय समर्थन से नहीं की जा सकती है और इस मोड़ पर इन्हें लागू करने से होने वाली दिक्कतों की दो वजह हैं। पहला, इससे मूलभूत सामाजिक कार्य और कल्याण करने की राज्य की क्षमता पर बुरा असर होगा और दूसरा इससे राज्य यह सोच सकता है कि पैसे देकर उसकी जवाबदेही समाप्त हो जाती है।

आय समर्थन योजनाएं सही हैं लेकिन बिना बुनियादी सुविधाओं को लागू किए आय समर्थन देना एक गंभीर गड़बड़ी पैदा कर देगा। कई विकसित देशों में सामाजिक और आर्थिक बुनियादी ढांचा तैयार करने के बाद आय समर्थन योजना लागू की गई ताकि अपेक्षाकृत कमजोर वर्ग की सहायता की जा सके।

देश के आर्थिक विकास के इस मोड़ पर आय समर्थन जैसा राजनीतिक तोहफा देने के दो अन्य विपरीत प्रभाव हो सकते हैं। यह मानना कतई समझदारी नहीं है कि कांग्रेस द्वारा घोषित आय समर्थन योजना जैसी कोई योजना चुनावी संभावनाओं में सुधार करेगी। यह अन्य राजनीतिक दलों को भी उत्साहित कर सकता है। सत्ताधारी भाजपा भी ऐसी कोई योजना ला सकती है जो शायद कहीं ज्यादा आकर्षक हो। अगर ऐसी होड़ शुरू हो गई तो देश के विकास लक्ष्यों पर बहुत बुरा असर होगा।

इससे राजस्व संसाधनों में कमी उत्पन्न होगी। इसकी भरपाई के लिए सरकार ऐसे कदम उठा सकती है जो देश में एक नए तरह का कराधान लागू कर सकते हैं। 3.6 लाख करोड़ रुपये के अतिरिक्त आर्थिक बोझ को पूरा करने के लिए सरकार की अन्य सब्सिडी को कम किया जा सकता है। सब्सिडी पर सरकार का पूरा बिल करीब 3 लाख करोड़ रुपये यानी जीडीपी का 1.6 फीसदी है। अतीत में अधिकांश सरकारें सब्सिडी कम करने की अनिच्छुक रही हैं या बहुत धीमी गति से यह काम किया है। भाजपा सरकार ने भी कमजोर किसानों के लिए आय समर्थन योजना लागू करते समय उर्वरक सब्सिडी कम करने का जिक्र नहीं किया। ऐसी कोई आशा नहीं है कि भविष्य की सरकारें आय समर्थन योजनाओं की घोषणा के बाद मौजूदा सब्सिडी को खत्म करेंगी।

प्रश्न यह उठता है कि इसके लिए संसाधन कहां से आएंगे? बेहतर अनुपालन और दायरा बढ़ाने से कर संग्रह बढ़ सकता है और यह वांछित भी है लेकिन आय समर्थन योजना से होने वाले राजस्व व्यय से पड़ने वाले भारी भरकम वित्तीय बोझ की भरपाई के लिए दबाव में काम कर रही सरकारें कर दरों में इजाफा भी कर सकती हैं। वे कर में इजाफा करके संसाधन जुटाने का प्रयास कर सकती हैं। यहां असल खतरा यह है कि सरकार ऐसी योजनाओं के लिए अधिक राजस्व जुटाने के लिए जल्दबाजी में ऐसा कर सकती है।

यह राह खतरनाक हो सकती है। अगर देश को इस राह पर धकेला गया तो उसका आरोप भाजपा और कांग्रेस दोनों को ही झेलना होगा। आय समर्थन योजनाओं को अधिक परिपक्व राजनीति तथा आर्थिक विकास के कहीं अधिक मजबूत दौर की आवश्यकता होती है। ऐसी योजनाएं केवल तभी लागू की जानी चाहिए जबकि सामाजिक और आर्थिक बुनियादी ढांचे का लक्ष्य पहले ही हासिल किया जा चुका हो। हमारा देश अभी इन दोनों लक्ष्यों से दूर है।

कानाफूसी

ऐपल क्रेडिट कार्ड

ऐपल ने पिछले दिनों आईफोन के ग्राहकों के लिए ब्रांडेड क्रेडिट कार्ड जारी किया। कई लोग कंपनी के इस कदम को विरोधाभासी मान रहे हैं। फिलहाल यह कार्ड अमेरिका में ग्राहकों के लिए शुरू किया गया है। ऐपल ने कहा कि यह कार्ड इस तरह डिजाइन किया गया है कि उपभोक्ताओं की वित्तीय सेहत दुरुस्त रहे। वहीं विश्लेषकों का कहना है कि यह उपभोक्ताओं की वित्तीय सेहत कम और कंपनी की ज्यादा दुरुस्त रखेगा। दिलचस्प है कि चार साल पहले कंपनी ने 'ऐपल पे' नामक भुगतान सेवा शुरू करते समय कहा था कि कार्ड और वॉलेट का जमाना बीत चुका है। पहले कंपनी ने क्रेडिट कार्ड को खारिज करने की बात कही थी और अब कुछ वर्ष के अंतराल पर वह खुद अपना क्रेडिट कार्ड जारी कर चुकी है। एक फंड प्रबंधक ने सही कहा कि कंपनियों की वृद्धि धीमी पड़ती है तो वे चौंकाने वाले कदम उठाती हैं।

बिजलियों में आशियां

कांग्रेस में अंदरूनी लड़ाई फिर जोर पकड़ रही है। कांग्रेस नेताओं के एक समूह का आरोप है कि पार्टी का ही एक अन्य समूह वरिष्ठ नेता और प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह का करियर समाप्त करने की साजिश रच रहा है। उसके मुताबिक इसी वजह से सिंह को भोपाल लोकसभा सीट से चुनाव लड़ने को कहा गया है। भोपाल भारतीय जनता पार्टी का गढ़ है और कांग्रेस पिछली बार यहां सन 1984 में चुनाव जीती थी। सिंह के बेटे और प्रदेश के शहरी प्रशासन एवं आवास मंत्री जयवर्द्धन सिंह अपने पिता के समर्थन में उतर आए हैं। पिता के भोपाल से चुनाव लड़ने की घोषणा होने के बाद उन्होंने ट्वीट किया, 'फलक को जिद है जहां बिजलियां गिराने की, हमें भी जिद है वहीं आशियां बनाने की। सर्वत्र दिग्विजय, सर्वदा दिग्विजय।'

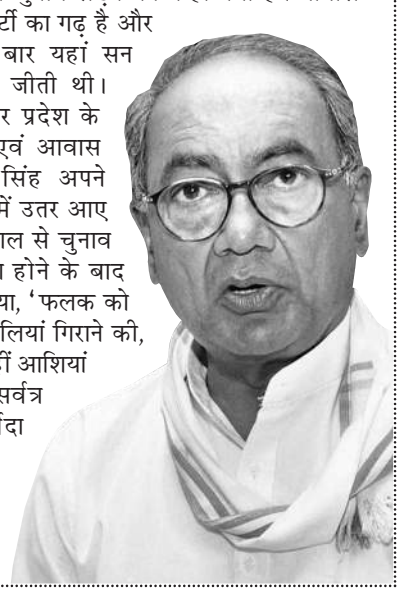

आपका पक्ष

लापरवाही की जवाबदेही तय हो

हरियाणा के हिसार जिले में डेढ़ साल के एक बच्चे के बोरवेल में गिरने के बाद बचाने की खबर सामने आई है। इस घटना का सुखद पहलू यह रहा कि बच्चे के बोरवेल में गिरने के बाद सरकारी बचाव एजेंसियों तथा सेना के जवानों ने उचित संसाधनों के जरिये 48 घंटे की मशक्कत के बाद उसे सकुशल बाहर निकाल लिया। बच्चों के इस तरह खुले गड्ढे या बोरवेल में गिरने की घटनाएं नई नहीं हैं। इससे पहले भी 2006 में हरियाणा में पांच वर्षीय प्रिंस की बोरवेल में गिरने की घटना राष्ट्रीय मीडिया में सुर्खियां बनी थीं। उस घटना ने देश भर का ध्यान खींचा था। लेकिन उस घटना से कोई सबक नहीं लिया गया, क्योंकि 2006 के बाद से आज तक ऐसी कई घटनाएं सामने आ चुकी हैं। बोरवेल में बच्चों के गिरने की घटनाएं लापरवाही का परिणाम है। सुरक्षा के बिना ऐसे गड्ढों के

खुला छोड़ने से बच्चे उनमें गिर जाते हैं। समय पर बचाव दल के नहीं पहुंच पाने के कारण अधिकतर बच्चों की मौत भी हो जाती है। इस तरह की लापरवाही को आपराधिक लापरवाही की श्रेणी में रखने की जरूरत है। ऐसी घटना में सरकारी संसाधन खर्च होता है। पीड़ितों को मुआवजा भी दिया जाता है।

किसी दुर्घटना में जिम्मेदारी तय कर व्यक्ति को सजा देने का प्रावधान करना चाहिए

किसी व्यक्ति की लापरवाही का बोझ सरकारी खजाने पर नहीं पड़ने देना चाहिए। घटना की जवाबदेही तय करते हुए खर्च हुई राशि की भरपाई जिम्मेदार व्यक्ति से वसूली जानी चाहिए। जिम्मेदार व्यक्ति पर आपराधिक मामला भी दर्ज करना चाहिए। भविष्य में ऐसी घटनाओं को रोकने के लिए स्पष्ट दिशानिर्देश जारी करते हुए मौजूद कानूनी प्रावधानों को सख्ती से लागू करने की जरूरत है।

ऋषभ देव पाण्डेय, कोरबा

देश में गहराता जल संकट

विश्व जल दिवस 22 मार्च को मनाया जाता है। इसका उद्देश्य विश्व को पीने योग्य जल की उपलब्धता तथा जल संरक्षण के महत्त्व के प्रति जागरूकता करना है। हम सभी जानते हैं कि पृथ्वी की 75 प्रतिशत सतह जल से घिरी हुई है, लेकिन केवल 3 प्रतिशत जल ही पीने योग्य है तथा 97 प्रतिशत समुद्री जल है। गर्मी के नजदीक आते ही सूखा और रेगिस्तानी इलाकों में पानी की समस्या गहराने लगती है। जहां जल की पर्याप्त उपलब्धता है वहां के लोग इसके प्रति गंभीर नहीं हैं। जल की जरूरत केवल मानव को ही नहीं वन्य प्राणियों और पशु पक्षियों को भी होती है। हमारा यह दायित्व बनता है कि हम उनके लिए भी जल का प्रबंध करें। लेकिन यह तो तभी संभव होगा जब हम स्वयं जागरूक होंगे। चुनावी मौसम में नेताओं द्वारा लोकलुभावन वादे किए जा रहे हैं लेकिन पर्यावरण की ओर किसी का ध्यान नहीं जा रहा है। ऐसे में स्वयं जनता को ही जागरूक होना होगा। हम दैनिक दिनचर्या में पानी की बरबादी को रोककर तथा बारिश के पानी का भंडारण कर इसका उपयोग दूसरे मौसम में कर सकते हैं। गांवों में तालाब की उचित देखरेख कर बारिश के जल का संरक्षण कर सकते हैं। हम सभी को मिलकर पानी की बरबादी को रोकना होगा, क्योंकि हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि बिना जल नहीं है कल।

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in
उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।